हे जीव! तुझे कहीं न रुचता हो तो अपना उपयोग पलट दे और आत्मा में रुचि लगा। आत्मा में रुचे ऐसा है। आत्मा में आनन्द भरा है; वहाँ अवश्य रुचेगा। जगत में कहीं रुचे ऐसा नहीं है परन्तु एक आत्मा में अवश्य रुचे ऐसा है। इसलिए तू आत्मा में रुचि लगा॥ १॥

....बहुतों को ऐसा विचार हुआ कि यह वाँचना। ब्रह्मचारिणी बहिनें हैं। बहिन रात्रि को बोले होंगे तो लड़कियों ने लिख लिया। वह यह बाहर आया। जरा प्रेम से सुनने योग्य है। बहिन के वचन हैं, इसलिए अनुभव में से निकले हुए हैं। आनन्द का अनुभव - अनुभूति। शर्त, एक शर्त

हे जीव! है न पहला? **हे जीव!** पहला ही बोल। **तुझे कहीं न रुचता हो तो...** यह शर्त। **तुझे कहीं न रुचता हो तो...** यह शर्त। यदि कहीं भी परपदार्थ में रुचे अथवा पुण्य और पाप के भाव, वह यदि रुचेगा तो आत्मा नहीं रुचेगा। आहा! जिसने... इसलिए पहला

शब्द पड़ा है। **तुझे कहीं न रुचता हो तो...** यह शर्त। आहाहा! इज्जत, कीर्ति, पैसा, लक्ष्मी, इज्जत और पुण्य एवं पाप दोनों भाव, वह भी तुझे नहीं रुचते हो तो। आहाहा! हमारी काठियावाड़ी भाषा-तने गमतु न होय तो। यह शब्द है। **न रुचता हो तो अपना उपयोग पलट दे...** आहाहा! अन्तर स्वभाव से विपरीत सब चीज़, तीर्थंकर परमात्मा भी, पर के ऊपर लक्ष्य जाने से राग ही होता है। भगवान के ऊपर लक्ष्य जाता है तो राग ही होता है। कहीं न रुचता हो तो... आहाहा! रुचि पलट दे। आहाहा! अपना उपयोग... पलट दे।

जिस उपयोग में आत्मा पकड़ में नहीं आता है तो समझना कि वह उपयोग स्थूल है। आहाहा! अन्दर जिस उपयोग में आत्मा पकड़ में नहीं आता, वह स्थूल उपयोग है- वह स्थूल उपयोग है। सूक्ष्म बात है, यह तो मूल की अन्दर की बातें है। इसलिए तुझे अन्दर आत्मा में जाना हो तो उपयोग को पलट, उपयोग को पलट दे। ऐसे जो उपयोग पर में है, एक ओर भगवान आत्मा और एक ओर लोकालोक। पाँच परमेश्वर की ओर भी यदि रुचि और राग रहेगा तो अपनी ओर उपयोग नहीं पलटेगा। आहाहा! ऐसी बात है।

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप, सत् ज्ञान और आनन्दस्वरूप। वहीं तेरे उपयोग को पलट दे और आत्मा में रुचि लगा। यह करना है। छहढाला में आता है। 'लाख बात की बात...' आता है न? 'निश्चय उर आणो, छोड़ी जगत द्वंद्व फंद, निज आतम ध्यावो।' यह छहढाला में आता है। यह एक टूकड़ा बस है। लाख बात की बात, करोड़ बात की बात निश्चय उर आणो। छोड़ी जगत द्वंद्व फंद, (अर्थात्) द्वैतपना भी छोड़ दे। आहाहा! अन्दर आत्मा मैं हूँ और यह राग है, ऐसा द्वैत भी छोड़ दे। द्वैतपना छोड़ दे और आत्मा की रुचि करके अन्दर जा। अन्दर आत्मा में प्रवेश कर। सूक्ष्म बात है, भाई! मुद्दे की रकम की बात है। बाकी अनन्त बार ग्यारह अंग भी अनन्त बार धारण किया। एक अंगर १८ हजार पद और एक-एक पद में ५१ करोड़ से अधिक श्लोक। ५१ करोड़ से अधिक श्लोक। आहाहा! ऐसा ग्यारह अंग भी धारण किया। परन्तु रुचि जो अन्तर्मुख चाहिए वह नहीं थी। बाहर में कहीं न कहीं उसका अटकना होता है। यदि अटकना नहीं हो तो अन्दर गये बिना रहे नहीं। आहाहा! यह खोज निकालना चाहिए कि मेरा कहाँ रुकना होता है? मैं कहाँ रुचि करता हूँ?

यह कहते हैं। **आत्मा में रुचि लगा।** आहाहा! सब छोड़ दे। पुण्य, दया, दान, व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प को भी छोड़ दे। क्योंकि उसमें आत्मा नहीं है, वह तो अनात्मा है। आत्मा में उपयोग लगा दे। वह तो रागरहित उपयोग हुआ। आहाहा! करना यह है। बाकी लाख बात कोई भी हो। **आत्मा में रुचि लगा। आत्मा में रुचे ऐसा है...** पहला शब्द ऐसा कहा कि आत्मा में रुचि लगा। क्यों? कि **आत्मा में रुचे ऐसा है...** आत्मा में रुचे ऐसा है। आत्मा में रुचे ऐसा है। अतीन्द्रिय आनन्द अन्दर पड़ा है। असंख्य प्रदेश में सर्वांग आनन्द (भरा है)। आहाहा! **आत्मा में रुचे ऐसा है।** यह शर्त। ऐसे आत्मा में रुचि लगा दे। समझ में आया? भाषा सादी है। भाव गम्भीर है।

पहले कहा न? **तुझे कहीं न रुचता हो तो...** कहीं न रुचे तो। आहाहा! आत्मा के अतिरिक्त कहीं भी न रुचता हो तो अपने में रुचि लगा दे। और अपने में रुचि लगा दे (क्योंकि) आत्मा में रुचि लग सकती है। आत्मा में रुचे ऐसा है आत्मा। पुण्य और पाप रुचे, ऐसी चीज़ नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! आहाहा! यहाँ तो प्रभुरूप से ही सबको बुलाते हैं। भगवान है। आत्मा भगवान अन्दर पूर्णानन्द का नाथ।

आत्मा में आनन्द भरा है;... दो बात की। आत्मा में रुचि लगा। क्यों? कि **आत्मा में रुचे ऐसा है।** आत्मा में रुचे ऐसा है, उसका कारण। आत्मा में रुचि लगा दे, उसका कारण कि **आत्मा में आनन्द भरा है;...** आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड प्रभु है। आहाहा! वह कर्म के संग से भी भिन्न है और पुण्य-पाप का विकल्प-भाव, उससे भी भगवान अतीन्द्रिय आनन्दकन्द प्रभु (भिन्न है)। भाषा में तो दूसरा क्या आवे? भाव ऐसी कोई चीज़ है कि अनन्त काल में कभी हुआ नहीं। अनन्त बार... 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो,' दिगम्बर मुनि। दूसरे को मुनि नहीं कहते। द्रव्यलिंग भी नहीं है। वस्त्रवाला तो द्रव्यलिंगी भी नहीं है। आहाहा! यह तो वस्त्ररहित दिगम्बर अनन्त बार नौवीं ग्रैवेयक गया। नौवीं ग्रैवेयक गया, उसका परिणाम कैसा होगा? शुक्ललेश्या। शुक्ललेश्या के बिना ग्रैवेयक में जाए नहीं। आहाहा! शुक्ललेश्या। चमड़ी उतारकर नमक डाले तो भी क्रोध न करे। बाह्य क्षमा उतनी है। परन्तु अन्तर आत्मा आनन्दकन्द है, उसकी ओर रुचि नहीं है। बाहर की सब सामग्री में रुचि; अन्तर आनन्द का नाथ प्रभु, उस ओर रुचि लगा दे। क्योंकि रुचि लगे (ऐसा है)। क्यों लगे? कि वहाँ आनन्द है। आहाहा!

रात को थोड़ा बोले थे। यहाँ बाल ब्रह्मचारी ६४ बहनें हैं। उनके नीचे ६४ बहनें बाल ब्रह्मचारी हैं। कितनी तो ग्रेज्युऐट है, लाखोंपति की है। उसमें नौ बहनों ने लिख लिया था। उनके भाई हिम्मतभाई के हाथ लगा। फिर यहाँ आया। ओहोहो! इन शब्दों में गम्भीरता है। अकेले शब्द नहीं है, शब्द के पीछे गूढ़ता है।

तुझे कहीं न रुचता हो तो अन्तर में रुचि करे। क्यों? कि वहाँ रुचि करने लायक है। क्यों? कि उसमें आनन्द है। आहा! आहाहा! **आत्मा में आनन्द भरा है;...** पुण्य और पाप का भाव है, वह जहर है। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव राग है, जहर है। आहाहा! भगवन्त आत्मा अमृतस्वरूप है। वह बन्ध का एक भी अंश-कारण नहीं। जो बन्ध का कारण हो, वह राग तो जहर है। आहाहा! इसलिए कहते हैं, **आत्मा में आनन्द भरा है;...** पुण्य और पाप के भाव में दुःख है।

वहाँ अवश्य रुचेगा। प्रभु! आत्मा में आनन्द भरा है। तुझे वहाँ अवश्य रुचेगा। आहाहा! है? **वहाँ अवश्य रुचेगा।** सब पर से रुचि छोड़। वहाँ अन्दर में अवश्य रुचेगा। भगवान अन्दर आनन्दमूर्ति प्रभु। इस ज्ञान पर तू इस बात को ले कि करना तो यह है, बाकी सब पुण्य है, पुण्य। आहाहा! जगत में कहीं रुचे, ऐसा नहीं है। जगत में कुछ भी रुचे, ऐसा है नहीं। पुण्य और पाप भी रुचे, ऐसे नहीं है। **परन्तु एक आत्मा में अवश्य रुचे ऐसा है।** दुनिया की कोई चीज़ में रुचे, ऐसा नहीं है। क्योंकि बाहर में लक्ष्य जाए, तीन लोक के नाथ तीर्थंकर और परमेश्वर, पंच परमेष्ठी पर लक्ष्य जाए तो राग हुए बिना रहता नहीं। परद्रव्य पर (लक्ष्य) जाए तो राग आता ही है। स्व-आश्रय में जाए तो रागरहित होता है। दो बात। यह सिद्धान्त।

स्व-आश्रय भगवान परमात्मस्वरूप आत्मा, भगवत्स्वरूप का आश्रय लेने में आनन्द है। उसके अतिरिक्त दूसरे किसी का भी आश्रय लेने जाएगा, पंच परमेष्ठी का आश्रय लेने जाएगा तो भी राग और दुःख उत्पन्न होगा। आहाहा! कठिन बात है, भाई! वहाँ तो जन्म-मरण रहित होने की बात है। जिसका जन्म-मरण न मिटे, उसने कुछ किया नहीं। यहाँ तो एक ही बात है। जिसके भव का नाश नहीं हुआ, उसने कुछ नहीं किया। आहाहा! भव का नाश कब होता है? जिसमें भव और भव का भाव, जिसमें अभाव है। आत्मा जो, है उसमें भव और भव का भाव, दोनों का अभाव है। आहाहा! उस आत्मा पर दृष्टि और

रुचि करेगा तो तू जरूर भावरहित होगा। और भव में यदि रहेगा तो कहीं न कहीं नरक और निगोद...आहाहा!

आचार्य ने तो वहाँ तक कहा, कपड़े का टुकड़ा रखकर मुनि है, ऐसा माने तो निगोद में जाएगा। अरे..रे..! आहाहा! क्योंकि नवों तत्त्व की भूल हुई। क्योंकि टुकड़ा रखा, संयोग आया। छट्ठे गुणस्थान में मुनि को तीन कषाय का अभाव हुआ हो, वहाँ कपड़ा होता ही नहीं। कपड़ा आया तो उतना राग आया। मुनिपना रहा नहीं। और राग को संवर माना तो मिथ्यात्व हुआ। वह है आस्रव; आस्रव को संवर माना। वह संवर है नहीं, तो संवर की भूल, आस्रव की भूल, अजीव की भूल। इतना संयोग है, वह राग के बिना होता नहीं। अजीव की भूल और जीव की भूल। जीव का आश्रय उतना हो छट्ठे गुणस्थान तक तो उसको वस्त्र का विकल्प होता नहीं। सबकी भूल हुई, नवों तत्त्व की। आहाहा! यह कोई सम्प्रदाय नहीं है। यह तो तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव परमेश्वर सीमन्धरस्वामी भगवान महाविदेह में विराजते हैं, वहाँ गये थे, वहाँ से आया है। बहिन भी वहाँ से आयी है। थोड़ी सूक्ष्म बात है। समझ में आया? आहाहा!

एक आत्मा में अवश्य रुचे ऐसा है। इसलिए तू आत्मा में रुचि लगा। आहाहा! सब बात छोड़कर... जानपना-बानपना बहुत करना, वह छोड़ दे। इसकी रुचि लगा दे। आहाहा! प्रवचनसार में शुरुआत में आता है। अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, बस-अलम। मुझे विशेष ज्ञान की जरूरत नहीं है। प्रवचनसार में ३४ गाथा। अब ज्ञान की जरूरत (नहीं है)। रुचि-दृष्टि और स्थिरता। बस दो। ज्ञान भले अल्प हो, परन्तु दृष्टि पूरे भगवान पर और स्थिरता। बस, अलम। मुझे कुछ जानपने की जरूरत नहीं है। ऐसा लिखा है। टीका है, प्रवचनसार में टीका है। मालूम है, सब देखा है न। (संवत) १९७८ के वर्ष से यह शास्त्र देखते हैं। ७८। कितने वर्ष हुए? ५८। ५८ वर्ष हुए। सब शास्त्र (देखे हैं)। आहाहा! **इसलिए तू आत्मा में रुचि लगा।** अब दूसरा (बोल)। भाई ने लिखा है। किसने लिखा है? किसी ने दिया है। इसके बाद १०वाँ बोल पढ़ना। किसी ने दिया है। अभी किसी ने पन्ना दिया था न? उसमें लिखा है। पहला बोल, फिर १०वाँ। १०वाँ बोल।

हम सबको सिद्धस्वरूप ही देखते हैं, हम तो सबको चैतन्य ही देख रहे हैं। हम किन्हीं को राग-द्वेषवाले देखते ही नहीं। वे अपने को भले ही चाहे जैसा मानते हों, परन्तु जिसे चैतन्य - आत्मा प्रकाशित हुआ, उसे सब चैतन्यमय ही भासित होता है॥ १०॥

हम सबको सिद्धस्वरूप ही देखते हैं,... १०। आहाहा! जिसकी पर्यायबुद्धि गयी, जिसकी पर्यायबुद्धि, राग की रुचि गयी, उसको पूरा आत्मा दृष्टि में आया। चैतन्य का नूर का पूर, आनन्द का पूर प्रभु, वह जिसे रुचि में सम्यग्दर्शन में आया, उसको सब आत्मा ऐसे हैं - ऐसा दिखता है। उसकी पर्याय में भूल है, उसे एक ओर रखो। परन्तु आनन्द.. आनन्द.. आनन्द.. सब भगवान है। जिसकी पर्याय में से, राग में से रुचि हटकर अन्दर आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसकी जहाँ भेंट हुई, तो आत्मा तो वह है। राग या एक समय की पर्याय भी आत्मा नहीं। एक समय की पर्याय व्यवहार आत्मा है। आहाहा! समझ में आया?

दोपहर को पढ़ते है, वह कौन-सा शास्त्र है? नियमसार। नियमसार में तो ऐसा कहा है कि एक भी राग के अंश में दूसरे का आश्रय लेना, वह राग है। आत्मा को उससे बिल्कुल लाभ नहीं है। पर के आश्रय में आत्मा को बिल्कुल लाभ नहीं है। श्रवण से भी ज्ञान नहीं होता है, ऐसा वहाँ कहा है। प्रभु! जिसमें ज्ञान है, उसमें से ज्ञान आता है या वाणी में से? वाणी तो जड़ है। उसमें से ज्ञान आता है? आहाहा! कहना था दूसरा, आ गया दूसरा।

सिद्धस्वरूप ही देखते हैं, हम तो सबको चैतन्य ही देख रहे हैं। क्योंकि अपना आत्मा चैतन्य है, ऐसा अपने को भान हुआ तो उस दृष्टि से सब आत्मा चैतन्य भगवान हैं। आहाहा! बन्ध अधिकार में - बन्ध अधिकार है, उसमें अन्तिम में और सर्वविशुद्धज्ञान (अधिकार के) अन्तिम में, और परमात्मप्रकाश में अन्तिम में एक ऐसी बड़ी बात ली है कि सर्व जीव मन-वचन-काय से रहित, राग से रहित, तीन शल्य से रहित आनन्दकन्द प्रभु है। ऐसी सब जीव की भावना भा। ऐसा संस्कृत पाठ है।

मुमुक्षु :- द्रव्य संग्रह में भी कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ। वह तो है। यह तो बड़ा पाठ है। यहाँ नहीं है। है? बड़ा पाठ है। बहुत बड़ा पाठ है। पहले कहा था न?

एक बार हम संसार में थे। दुकान (पर बैठते थे)। तो माल लेने हम वडोदरा गये थे। वडोदरा के पास पालेज है न? वहाँ हमारी दुकान थी। अभी लड़का आया था न। दुकान है न। बड़ी दुकान है। १८ वर्ष की उम्र थी, अभी ९१ हुए। ९१। १८ वर्ष की उम्र में माल लेने गये थे। माल लेने के बाद रात्रि में निवृत्ति मिली। फिर अनुसूईया का एक नाटक था। अनुसूईया, भरुच के पास जो नर्मदा है और अनुसूईया दोनों बहनें थीं। एक बहन कुँवारी थी। कुँवारी समझे? शादी नहीं की थी और स्वर्ग में जाती थी। उन लोगों में ऐसा है न, अपुत्रस्य नास्ति। अपुत्रस्य गति नास्ति। पुत्र नहीं हो, उसे गति नहीं मिलती। उन लोगों में है। इसलिए उस बाई ने कहा, मैं क्या करूँ? नीचे जा और किसी से भी शादी कर ले। आहाहा! शादी की। बालक हुआ।

मुझे तो दूसरा कहना है। हमारे में भाषा है। इसमें तो मात्र अमृतचन्द्राचार्य की (टीका) है। जयसेनाचार्य की नहीं है। है? क्या कहते हैं आचार्य महाराज? देखो! मुझे तो यह कहना है (कि) मैंने यह शब्द वहाँ नाटक में देखा था। लड़का हुआ। फिर सुलाते हैं न? सुलाते हैं। (संवत) १९६४ की साल। ६४। वह बाई कहती है, बेटा! तू निर्विकल्प है। बेटा! तू उदासीन है। तेरा आसन राग नहीं; आसन अन्दर आनन्द है। उदासीन.. उदासीन.. उदासीन.. नाथ! तू है। आहाहा! नाटक में उन दिनों में ऐसा बोलते थे। बारह आने की टिकिट और आप लोग जो बोलते हो, उसकी पुस्तिका दो। दूसरे बारह आने लो। किन्तु आप क्या बोलते हो, हमें मालूम होना चाहिए। ६४ की बात है। चार बोल तो याद रह गये। निर्विकल्पो अहं। बेटा! तू निर्विकल्प है। शुद्धोसि, बुद्धोसि, उदासीनोसि। अपने में भी है। जयसेनाचार्य की टीका में बन्ध अधिकार की टीका में अन्त में संस्कृत में है और सर्वविशुद्ध में टीका में है और परमात्मप्रकाश पूर्ण हुआ, बाद में टीका में है। तीन जगह है। बहुत बोल हैं।

मैं सहज शुद्ध ज्ञान और आनन्द एक स्वभाव हूँ। उसमें पाठ है, संस्कृत में। यह तो

गुजराती है। मैं सहज शुद्ध ज्ञान और आनन्द जिसका एक स्वभाव है, ऐसा मैं हूँ। आहाहा! तीन में लिखा है, संस्कृत टीका में है। थोड़े शब्द नहीं है, पूरा लिखा है। मैं निर्विकल्प हूँ। उदासीन हूँ। यह शब्द वहाँ आया था। निज निरंजन शुद्ध आत्मा का। निज निरंजन शुद्ध आत्मा का सम्यक् श्रद्धान ज्ञान, अनुष्ठानरूप निश्चयरत्नत्रय धारक निश्चयरत्नत्रयात्मक निर्विकल्प समाधि, उससे उत्पन्न वीतराग सहजानंदरूप सुख की अनुभूतिमात्र जिसका लक्षण है। सुख की अनुभूतिमात्र जिसका लक्षण है। आनन्द का अनुभव ही जिसका लक्षण है। आहाहा! जयसेनाचार्य की टीका है। जयसेनाचार्य की संस्कृत टीका है। दो-चार शब्द नहीं, पूरी लाईन है।

निर्विकल्प, उससे उत्पन्न वीतराग श्रद्धा, सुख की अनुभूतिमात्र जिसका लक्षण। ऐसे स्वसंवेदनज्ञान द्वारा। ऐसे स्वसंवेदनज्ञान द्वारा। आहा..! स्वसंवेदन-अपने से वेदन में आने योग्य। ऐसा जाननेयोग्य, प्राप्त अर्थात् होनेयोग्य। ऐसा भरित अवस्थ। क्या कहते हैं? भरित अवस्थ। पूर्ण गुण से मैं भरा हूँ। अवस्थ-निश्चयस्थ ऐसे लेना। अवस्थ अर्थात् अवस्था नहीं लेना। भरित अवस्थ। अनन्त गुण से भरा पड़ा मैं हूँ। आहाहा! है, पाठ है, हाँ! इसमें पाठ है। यह तो गुजराती पढ़ा। तीन जगह पाठ है। आहाहा!

मैं भरित अवस्थ। भरित अवस्थावाला परिपूर्ण। आहाहा! मेरी शील दशा भरी पड़ी है। आहाहा! मेरा स्वभाव ही शीलस्वरूप है। ऐसी भावना समकिती अपने में अपने लिये भाते हैं और सब जीव के लिये भाते हैं। ऐसी बात है। मैं, राग-द्वेष-मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ, पाँच इन्द्रियों का विषय व्यापार, मन-वचन-काया का व्यापार, उससे रहित हूँ। आहाहा! रहित हूँ, वह तो अपने लिये कहा। लेकिन सब आत्मा ऐसे हो, ऐसी भावना है। ऐसी बात है यहाँ। पाठ में ऐसा आयेगा।

इन्द्रियों का व्यापार, मन-वचन-काया का व्यापार, भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म रहित। ख्याति, पूजा, लाभ एवं दृष्ट, श्रुत, अनुभूत भोगों की आकांक्षारूप निदान, माया, मिथ्यात्व आदि तीन शल्य रहित। सर्व विभाव परिणाम रहित शून्य हूँ। मैं तो शून्य हूँ। तीनों लोक में... अब अन्तिम सार आया। इन तीनों लोक में, तीनों काल में शुद्ध निश्चयनय से मैं ऐसा हूँ, तथा सभी जीव ऐसे हैं। यह संस्कृत है। यह संस्कृत में है। इतने बोल कहे, ऐसा मैं हूँ, परन्तु सर्व जीव ऐसे हैं। मुझे कोई जीव अल्प नहीं दिखते। आहाहा! पर्यायबुद्धि जहाँ

गई तो द्रव्यबुद्धि हुई। तो सब आत्मा को द्रव्य—समान देखते हैं। साधर्मी हैं। द्रव्य से साधर्मी है; पर्याय की भूल, उसकी वह जाने। आहाहा!

तीनों काल, तीन लोक में शुद्ध निश्चयनय से सब जीव ऐसे हैं। सब जीव ऐसे हैं। आचार्य महाराज जयसेनाचार्य कहते हैं कि, तुम तो ऐसे हो, परन्तु सर्व जीव ऐसे हैं। सब भगवान उदासीन मन-वचन-काया से भिन्न है। सहजानन्द की मूर्ति है। मन-वचन-काया से सब जीव भिन्न है। मन-वचन-काया की और कृत-कारित-अनुमोदना से निरन्तर भावना कर्तव्य। ऐसी भावना करना। मैं तो शुद्ध हूँ परन्तु सर्व भगवान शुद्ध है। ऐसी भावना करनी। बड़ा लेख है। इसका गुजराती बनाया है। बड़ा लेख है संस्कृत टीका में।

यहाँ कहते हैं, **हम...** दसवाँ बोल। **सबको सिद्धस्वरूप ही देखते हैं,...** इस अपेक्षा से। आचार्य महाराज का तीन जगह आधार है। बन्ध अधिकार पूरा करने के बाद भी संस्कृत में अधिकार है। सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार के अन्त में संस्कृत में है और परमात्मप्रकाश में अन्त में संस्कृत में है। इतने शब्द हैं, दो-चार शब्द नहीं। मुझे तो नाटक में से चार ही याद रहे। चार बोल है। बेटा! तू निर्विकल्पोशी, उदासीनोसी, सुद्धोसि, बुद्धोसि। आहाहा! ज्ञान का पिण्ड है, तू तो शुद्ध है। ऐसा नाटक में कहते थे। ६४ के वर्ष। कितने वर्ष हुए? नाटक में ऐसे बोलते थे। वह अभी सम्प्रदाय में बोलते नहीं। एकान्त है, निश्चय है (ऐसा लोग कहते हैं)। अरे..! भगवान! सुन न प्रभु! तेरे में शक्ति पूर्णानन्द भरी है।

वह यहाँ कहते हैं, देखो! **सबको सिद्धस्वरूप ही देखते हैं,...** आहाहा! सब अन्दर सिद्धस्वरूपी प्रभु (है)। एक समय की पर्याय में, एक समय की पर्याय में संसार है। वस्तु में संसार नहीं है। वस्तु में उदयभाव या कोई भाव नहीं है। आहाहा! **हम सबको सिद्धस्वरूप ही...** 'ही' शब्द पड़ा है। सिद्धस्वरूप ही। निश्चय। देखते हैं। **हम सबको चैतन्य ही देख रहे हैं।** आहाहा! सबको चेतनस्वरूप भगवान (देखते हैं)। यह शरीर, मिट्टी नहीं, कर्म भी नहीं। कर्मवाला आत्मा है, ऐसा हम मानते नहीं। कर्म भिन्न है, आत्मा भिन्न है। कर्म आत्मा को छूते नहीं, आत्मा कर्म को कभी तीन काल में छूता नहीं। लोग चिल्लाते हैं, कर्म से हुआ, कर्म से हुआ, कर्म से हुआ। सब झूठ बात है। कर्म आत्मा को छूते नहीं, क्योंकि परद्रव्य है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कभी छूता नहीं। अरे..! ऐसी बात है, प्रभु! उसमें से है। संस्कृत टीका है। आहा..!

हम तो सबको चैतन्य ही देख रहे हैं। 'ही' शब्द पड़ा है, देखो! पहले में भी 'ही' है। **हम सबको सिद्धस्वरूप ही देखते हैं,...** एकान्त निश्चय। सबको, हम तो सबको निश्चय ही देख रहे हैं। **हम किन्हीं को राग-द्वेषवाले देखते ही नहीं।** आहाहा! द्रव्यस्वभाव में कोई राग-द्वेष है ही नहीं। द्रव्यस्वभाव परिपूर्ण भगवान है। आहाहा! उस द्रव्यस्वभाव में तो सिद्धपर्याय भी नहीं है। सिद्धपर्याय तो एक समय की पर्याय है। आहाहा! और आत्मा तो ऐसी अनन्तों पर्याय का पिण्ड है। ऐसी बात है, प्रभु! कठिन बात लगे।

दूसरे जीव, **वे अपने को भले ही चाहे जैसा मानते हों, परन्तु जिसे चैतन्य - आत्मा प्रकाशित हुआ...** आहाहा! जिसको अन्दर में चैतन्य प्रकाशित हुआ। चैतन्य राग से भिन्न होकर प्रकाशित हुआ, विकल्प से भिन्न होकर निर्विकल्प हुआ। समयसार में तो वहाँ तक कहा, १४२ गाथा, मैं ज्ञायक हूँ, वह विकल्प है, उसे छोड़ दे। पुण्य-पाप की बात तो दूर रह गई। ऐसा पाठ है। मैं ज्ञायक हूँ, मैं शुद्ध हूँ, ऐसा विकल्प है, वह राग है। राग छोड़ दे। ज्ञायक में विकल्प-फिकल्प है नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! आत्मा की बड़ी बात है। बड़े की बड़ी बात है। आहाहा!

आत्मा प्रकाशित हुआ, उसे सब चैतन्यमय ही भासित होता है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है। जिसने चैतन्यस्वरूप देखा। अनुभव में आया, वह सबको चैतन्यस्वरूप देखता है। वह भगवान है, वह परमात्मा है, परमेश्वर है। पर्याय में भूल है, उसको वह जाने। उसका नुकसान उसको है। आहाहा! दसवाँ बोल हुआ। ११वाँ। वह प्रवचनसार का है। अपवाद और उत्सर्ग का।

मुमुक्षुओं तथा ज्ञानियों को अपवादमार्ग का या उत्सर्गमार्ग का आग्रह नहीं होता, परन्तु जिससे अपने परिणाम में आगे बढ़ा जा सके, उस मार्ग को ग्रहण करते हैं किन्तु यदि एकान्त उत्सर्ग या एकान्त अपवाद की हठ करे तो उसे वस्तु के यथार्थ स्वरूप की ही खबर नहीं है॥ ११॥

मुमुक्षुओं तथा ज्ञानियों को अपवादमार्ग का या उत्सर्गमार्ग का आग्रह नहीं होता,... क्या कहते हैं? प्रवचनसार में है। मैं ध्यान में ही रहूँ, ऐसा बहुत आग्रह करेगा और

विकल्प तो ज्ञानी को भी उठते हैं। इसलिए हठ करने जाएगा तो विकल्प से भ्रष्ट हो जाएगा। आहाहा! ध्यान में है, वह उत्सर्गमार्ग है। ध्यान में रह सके नहीं, विकल्प आया, वह अपवादमार्ग है। इसलिए उत्सर्ग और अपवाद की मैत्री रखनी। मैत्री अर्थात् है, ऐसा जानना। है जरूर राग। आहाहा! यह प्रवचनसार में है। उसकी यहाँ बात है। उत्सर्ग और अपवाद... देखो! **ज्ञानियों को अपवादमार्ग का...** अपवाद अर्थात् राग। रागादि आता है। अन्दर ध्यान में स्थिर न हो सके, अन्दर स्थिर न रहे तो राग दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा का भाव आता है। परन्तु वह भाव अपवादमार्ग है, उत्सर्गमार्ग नहीं। उत्सर्गमार्ग तो उससे (विकल्प से) छूटकर अन्दर में रमता है, वह उत्सर्गमार्ग है। यह प्रवचनसार में है। आहाहा!

मुमुक्षु :- ग्रहण-त्याग है ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- आहा..!

मुमुक्षुओं तथा ज्ञानियों को अपवादमार्ग का या उत्सर्गमार्ग का आग्रह नहीं होता,... मैं ध्यान में ही रहूँ, ऐसा आग्रह भी नहीं करना। सम्यग्दर्शन हुआ, ज्ञान हुआ तो मैं ध्यान में ही रहूँ, ऐसा आग्रह नहीं करना। क्योंकि विकल्प आयेगा। तो दृष्टि वहाँ रहेगी- दृष्टि द्रव्य पर रहेगी। विकल्प आयेगा अपवाद। अपवाद का भी आग्रह नहीं करना कि मुझे विकल्प में ही रहना है। ऐसा आग्रह नहीं होना चाहिए। उसे छोड़कर अन्दर में जाना। आहाहा!

प्रवचनसार। उत्सर्ग और अपवाद दोनों साथ में है। साधक है न, साधक है। अन्तर में पूर्णता का स्वरूप दृष्टि, अनुभव में आया तो उसी में ध्यान में रहना, वह तो उत्सर्गमार्ग। उत्सर्ग अर्थात् मूल मार्ग है। परन्तु उसमें रह सकता नहीं। दृष्टि वहाँ रहे, दृष्टि वहाँ द्रव्य ऊपर हमेशा है। दृष्टि द्रव्य से हटती नहीं। फिर भी अस्थिरता का विकल्प आता है, वह अपवाद है। उसमें आग्रह नहीं करना कि वह नहीं आये। विकल्प नहीं आये। ऐसा आग्रह नहीं करना। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! वार्ता नहीं है। यह तो आत्मा की कथा है। आहाहा!

भवभ्रमण नहीं हो, ऐसा वस्तु। भव करे, एक करे, दूसरा करे, ऐसा अनन्त भव करेगा। भव ही नहीं हो। यहाँ... अपने उत्सर्गमार्ग में तो ध्यान में ही रहना। परन्तु उसका

भी आग्रह नहीं। छद्मस्थ है तो राग आयेगा। तो उसको अपवाद में आना चाहिए। अपवाद का भी आग्रह नहीं कि राग आया, वह ठीक है। वह आग्रह नहीं। वहाँ से निकलकर ध्यान में जाना। आहाहा! उत्सर्ग और अपवाद। आया न? आग्रह नहीं होना (चाहिए)।

परन्तु जिससे अपने परिणाम में आगे बढ़ा जा सके... जिस परिणाम से आगे बढ़ा जा सके, वह परिणाम करना। **उस मार्ग को ग्रहण करते हैं...** द्रव्य के आश्रय से; द्रव्य नाम चैतन्य भगवान, उसके आश्रय से ही मोक्षमार्ग होगा। स्वद्रव्य के आश्रय से ही मोक्षमार्ग है। रागादि परद्रव्य के आश्रय से मोक्षमार्ग है नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप के आश्रय से ही सच्चा मोक्षमार्ग होगा। परन्तु उसका एकदम आग्रह नहीं करना कि मुझे भान हुआ तो मैं उसमें ही रहूँगा। अस्थिरता आयेगी, तब विकल्प-अपवाद आयेगा। जाने। ठीक है, ऐसे नहीं। विकल्प आये, वह ठीक है ऐसा नहीं। आवे उसको जाने। तथापि आग्रह नहीं करे कि विकल्प आने ही नहीं देना। ऐसा आग्रह भी नहीं। साधक है न? आहाहा! **उस मार्ग को ग्रहण करते हैं...**

किन्तु यदि एकान्त उत्सर्ग या एकान्त अपवाद की हठ करे... देखा! ऐसा पाठ है प्रवचनसार में। अन्दर अकेले ध्यान में ही रहूँ और बाहर नहीं आऊँ, ऐसी हठ करे तो ऐसे नहीं रह सकेगा। छद्मस्थ है, अल्पज्ञ है, पुरुषार्थ की कमजोरी है। तो अन्दर में ध्यान में उत्सर्ग में नहीं रह सकता। अपवाद—विकल्प भक्ति आदि का आता है और विकल्प का भी आग्रह नहीं कि यह है तो ठीक है। ऐसा नहीं। मैं अन्दर स्थिर नहीं हो सकता हूँ, इसलिए यह विकल्प आया है। परन्तु विकल्प आया है तो हठ नहीं करना। हठ नहीं करने का अर्थ-विकल्प से लाभ है, ऐसा मानना नहीं। आहाहा! मार्ग ऐसा है। ओहोहो!

एकान्त उत्सर्ग या एकान्त अपवाद की हठ करे तो उसे वस्तु के यथार्थ स्वरूप की ही खबर नहीं है। आहाहा! क्योंकि छद्मस्थ को एकरूप ध्यान सदा नहीं रहता। एकरूप ध्यान सदा तो केवली को रहता है। एकरूप ध्यान... वह भी प्रश्न प्रवचनसार में उठा है कि प्रभु! केवली को ध्यान कहाँ है? उनको तो केवलज्ञान हो गया। ऐसा प्रश्न है। संस्कृत टीका। प्रभु केवलज्ञानी को आप ध्यान कहते हो। तो वे तो पूर्ण हो गये हैं। तो जवाब दिया है, वे आनन्द का ध्यान करते हैं। अतीन्द्रिय अनुभव करते हैं, वह आनन्द का ध्यान है। ऐसा पाठ प्रवचनसार में है। अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन करते हैं, वह उसका

ध्यान है। नीचे की दशा में तो राग आये बिना रहता नहीं। आहाहा! लेकिन राग धर्म है, राग आया तो ठीक हुआ, ऐसा ज्ञानी मानता नहीं। राग को काले नाग जैसा देखते हैं। इसमें आगे है। राग जहर है। आये बिना रहता नहीं। जब तक केवलज्ञानी न हो अथवा जब तक श्रेणी न चढ़े, तब तक राग आये बिना रहता नहीं। सम्यग्दृष्टि ज्ञानी मुनि को भी। आहा! मुनि को भी पंच महाव्रत का विकल्प है, वह राग है। पंच महाव्रत राग है। आहाहा! किन्तु आग्रह नहीं है कि इस राग से कल्याण होगा। ऐसा नहीं। आहाहा! अपने द्रव्य का आश्रय जितना आश्रय लिया, उतनी शुद्धि उत्पन्न हुई। पूर्ण आश्रय लिया तो पूर्ण शुद्धि हो गई, केवलज्ञान (हो गया)। केवलज्ञानी को फिर स्व का नया आश्रय लेना, ऐसा है नहीं। पूर्ण हो गया। केवलज्ञानी हुआ तो पूर्ण हो गया।

इसी तरह यहाँ कहते हैं कि **वस्तु के यथार्थ स्वरूप की ही खबर नहीं है।** हठ करने जाए अपवाद में विकल्प आये कि मुझे इसमें रहना है, यह ठीक है, उसे वस्तु की खबर नहीं। और अन्दर हठ करने जाए कि मुझे अन्दर ही रहना है, तो छद्मस्थ में शक्ति तो है नहीं, विकल्प तो आएगा। उसे ऐसे वस्तु की खबर नहीं। सूक्ष्म बात है, प्रभु! मार्ग थोड़ा सूक्ष्म है। आहाहा! वीतरागमार्ग... ! आहाहा! तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ भगवान का विरह पड़ा। भरतक्षेत्र में परमात्मा रहे नहीं। परमात्मा रहे नहीं, परन्तु परमात्मा होने की शक्ति रही नहीं। क्या कहा? अरिहन्त तो है नहीं। परन्तु अरिहन्त बनने की शक्ति रही नहीं। आहाहा! ऐसे पंचम काल में भी आत्मा का भान हो सकता है, वह बात कहते हैं। और ऐसे पंचम काल में... श्लोक में आयेगा। समयसार में संस्कृत में एक श्लोक है। ... उसमें टीका है। टीका में (ऐसे लिया है), यहाँ कदाचित् मोक्ष नहीं जाए, अभी काल ऐसा है, तीन काल में (भव में) जाएगा, ऐसा पाठ है। आहाहा! क्या कहा वह?

मुमुक्षु :- परम अध्यात्म तरंगिणी।

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ, उसमें। निकालो। ऐसा पाठ लिया है कि जिसने आत्मा का साधन किया, वह तीन भव में मोक्ष जाएगा। ऐसा लिखा है। अमृतचन्द्राचार्य का श्लोक है। यहाँ तो अनेक बार (स्वाध्याय) हो गया है। ७८ के वर्ष से प्रारम्भ किया है। हमारी तो दुकान थी। पालेज में अभी भी दुकान है न। वहाँ भी मैं तो शास्त्र ही पढ़ता था। लेकिन श्वेताम्बर के, श्वेताम्बर के। दशवैकालिक, उत्तराध्ययन... दुकान पर धन्धे पर बैठता था।

लेकिन भागीदार दुकान पर बैठते थे तो हम अन्दर शास्त्र पढ़ते थे। १८ वर्ष की उम्र। अभी तो ९१ हुए। यहाँ लिखा है, देखो!

'...' उसका शब्द संस्कृत पाठ में ऐसा है। जिसे यह मोक्षपंथ है पंचम काल में भी, वह अचिरात-अल्प काल में मोक्ष जाएगा। पाठ है। '...' अचिरात् का टीकाकार ने अर्थ किया है। अचिरात् का अर्थ-शीघ्रम्। 'तद्भवे' अथवा तीसरे भव में। आहाहा! संस्कृत है। ... साक्षात् परमात्मा भवति इति। आहाहा! वह तीसरे भव में मोक्ष जाएगा। पंचम आरा में मोक्ष नहीं है, इसलिए उसका पुरुषार्थ नहीं करना - ऐसा नहीं। तीसरे भव में मोक्ष जाएगा, लिखा है, संस्कृत टीका है। आहाहा!

यहाँ कहा, ११ बोल हो गये। १२।

जिसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई, उसकी दृष्टि अब चैतन्य के तल पर ही लगी है। उसमें परिणति एकमेक हो गई है। चैतन्य-तल में ही सहज दृष्टि है। स्वानुभूति के काल में या बाहर उपयोग हो, तब भी तल पर से दृष्टि नहीं हटती, दृष्टि बाहर जाती ही नहीं। ज्ञानी चैतन्य के पाताल में पहुँच गये हैं; गहरी-गहरी गुफा में, बहुत गहराई तक पहुँच गये हैं; साधना की सहज दशा साधी हुई है॥ १२॥

जिसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई,... क्या कहते हैं? आत्मा जो द्रव्य है त्रिकाली। एक समय की पर्याय के पीछे पाताल में, एक समय की पर्याय के पाताल में-तल में। तल अर्थात् ध्रुव। पर्याय है, वह ध्रुव पर तिरती है। आहाहा! वह पहले श्लोक में आ गया है। समयसार। समयसार में पहला (श्लोक)। पर्याय ध्रुव पर तिरती है। ऊपर रहती है। पर्याय ध्रुव में प्रवेश नहीं करती। ऊपर रहती है। आहाहा! वह पर्याय... कहते हैं, जिसको (पर्यायदृष्टि) छूट गई और धर्म दृष्टि हुई। त्रिकाल द्रव्य ज्ञायकभाव की दृष्टि हुई। **जिसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई, उसकी दृष्टि अब चैतन्य के तल पर ही लगी है।** अर्थात् क्या कहते हैं? **तल पर ही लगी है।** पर्याय का लक्ष्य ध्रुव पर रहता है। ध्रुव तल है। पर्याय ऊपर-ऊपर रहती है और ध्रुव है, वह उसका तल है। पर्याय के नीचे तल-ध्रुव रहा है। आहाहा!

जैसे पाताल होता है या नहीं ? वैसे यहाँ पर्याय ऊपर है, पर्याय अन्दर कभी प्रवेश नहीं करती। आहा..! पर्याय ऊपर रहती है। चाहे केवलज्ञान हो तो भी वह ध्रुव पर रहती है, ध्रुव में प्रवेश नहीं करती। यह कहते हैं। **जिसे द्रव्यदृष्टि प्रगट हुई, उसकी दृष्टि अब चैतन्य के तल पर ही लगी है।** चैतन्य का तल अर्थात् ध्रुव। आहाहा! समकिती की दृष्टि तल पर है। पाताल पर है। पर्याय के पीछे ध्रुव पड़ा है, ध्रुव पर दृष्टि है। दृष्टि है पर्याय, दृष्टि है पर्याय परन्तु उसका विषय है ध्रुव। आहाहा! समझ में आया ? उसका पाताल है। तल। पर्याय ऊपर है, ध्रुव उसका तल है, तल। जैसे पाताल में जाते हैं न। अन्दर में जाते हैं। आहाहा!

चैतन्य के तल पर ही लगी है। उसमें परिणति एकमेक हो गई है। समकिती अपने आत्मा को राग से भिन्न जानकर अपने ज्ञान में परिणति में लगा है। ज्ञान में एकमेक हो गया है। राग आता है किन्तु भिन्न रहता है। राग और ज्ञान एक नहीं हो जाते। ऐसी परिणति होती है। उपयोग बाहर जाए तो भी (स्वरूप से) दृष्टि नहीं हटती। समकिती का उपयोग बाहर जाए तो भी अन्दर की दृष्टि ध्रुव से नहीं हटती। ध्रुव से दृष्टि नहीं हटती। आहाहा!

मुमुक्षु :- परिणति एकमेक हो गयी माने द्रव्य में...

पूज्य गुरुदेवश्री :- परिणति-पर्याय ऊपर है। द्रव्य के ऊपर। उत्पाद-व्यय ऊपर है, ध्रुव अन्दर है।

मुमुक्षु :- एकमेक होती हुई भी एकमेक नहीं हुई...

पूज्य गुरुदेवश्री :- एकमेक नहीं है। लेकिन पर्याय में एकमेक है न। वह तो पर से भिन्न करना हो तो एकमेक है। अन्दर भिन्न नहीं। विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)